बहस

क्या मनोविज्ञान कोई विज्ञान है?

कमला मुकंद

मनोविज्ञान का नाम सुनते ही कई लोगों के मन में दढ़ियल मनोचिकित्सकों या सफेद कोट पहने लोगों की छवियां आती हैं जो प्रयोगशाला में चूहों को इधर-उधर दौड़ते देखते हैं। जिस व्यक्ति ने बरसों तक संजीदगी से मनोविज्ञान का अध्ययन किया हो, इन छवियों की बात सुनकर उसका दिल बैठ जाता है। मनोविज्ञान के अलग-अलग विषयों में बहुत विविधता है। पहली विविधता तो यही है कि इनमें अलग-अलग चीज़ों का अध्ययन किया जाता है। इसके अलावा अनुसंधान की विधियों में भी बहुत अंतर होते हैं। मसलन, मानव मस्तिष्क, भेजे और व्यवहार को समझने की कोशिश में मनोवैज्ञानिक अलग-अलग सवाल के संदर्भ में अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। कभी-कभी तरीका यह होता है कि भेजे को एक बंद डिब्बा मान लिया जाए जिसके अंदर की प्रक्रियाओं को समझने का एकमात्र रास्ता बाह्य व्यवहार के अवलोकनों पर आधारित है। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक लोग भेजे की आंतरिक क्रियाओं का भी अध्ययन करते हैं। जब भेजे की आंतरिक क्रियाओं के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष और अन्य विधियों से प्राप्त निष्कर्ष परस्पर मेल खाते हैं, तो बहुत अच्छा लगता है। एक तीसरा तरीका यह है कि किसी खास व्यवहार का अध्ययन करके यह देखने का प्रयास किया जाए कि वह किस मकसद को पूरा करता है - इसे विकास मनोविज्ञान कहते हैं। अलबत्ता, तरीका जो भी हो सारे ही मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर काम करते हैं।

सवाल यह है कि क्या मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों को विज्ञानसम्मत कहा जा सकता है। दूसरा सवाल यह है कि क्या वे खोजबीन की वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं। गहराई में जाएं तो पता चलता है कि इन सवालों के जवाब सीधे-सादे 'हां' या 'ना' में नहीं है। दरअसल इनके जवाब इस बात पर निर्भर होते हैं कि किसी अध्ययन का क्षेत्र क्या है, उस क्षेत्र के किस सिद्धांत पर काम किया जा रहा है और सम्बंधित परिघटना का अध्ययन करने हेतु मनोवैज्ञानिक ने किस तरीके का चुनाव किया है। इन सवालों का जवाब इस बात पर भी निर्भर है कि 'विज्ञानसम्मत' से आपका आशय क्या है। मसलन विज्ञान के दार्शनिक कार्ल पॉपर का मत था कि 'विज्ञानसम्मत' होने का सबसे महत्वपूर्ण मापदण्ड यह है कि क्या उस सिद्धांत या वक्तव्य को गलत साबित किया जा सकता है - इसे वे फाल्सीफाएबिलिटी (झुठलाए जाने योग्य) कहते हैं। अलबत्ता, 'विज्ञानसम्मत' की अन्य परिभाषाएं भी हैं।

सवाल यह है कि क्या मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों को विज्ञानसम्मत कहा जा सकता है। दूसरा सवाल यह है कि क्या वे खोजबीन की वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं। गहराई में जाएं तो पता चलता है कि इन सवालों के जवाब सीधे-सादे 'हां' या 'ना' में नहीं हैं।

अनुभव के आधार पर असत्यकरण

एक सच्चा वैज्ञानिक सिद्धांत वह है जिसकी जांच की जा सके। मगर किसी सिद्धांत की पुष्टि में चाहे जितने प्रमाण जुटाए जाएं, उस सिद्धांत को कभी भी पूर्णतः सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता (क्योंकि यह सम्भावना हमेशा बनी रहती है कि भविष्य में कोई प्रतिकूल उदाहरण सामने आ जाएगा)। इसलिए यह माना जाता है कि उसी सिद्धांत को विज्ञान सम्मत कहा जाए जो, कम से कम सिद्धांतन, असत्य साबित करने योग्य हो। यानी कोई तो ऐसा सबूत होना चाहिए जिसके सामने आने पर कहा जाएगा कि वह सिद्धांत गलत है।

फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व का मनोविश्लेषण

आधारित विवरण ऐसे सिद्धांत का उम्दा उदाहरण है जिसे गलत साबित नहीं किया जा सकता। कोई व्यक्ति किसी भी तरह के लक्षण या व्यवहार का प्रदर्शन करे, इसकी व्याख्या उसके बचपन की किसी मनोग्रंथि या सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया के आधार पर की जा सकती है। 'सब कुछ' की व्याख्या करने की यह 'क्षमता' कोई खूबी न होकर एक कमज़ोरी है जो व्यक्तित्व सम्बंधी कई सिद्धांतों में दिखती है।

दूसरी ओर स्विस मनोवैज्ञानिक ज़्यां पियाजे ने बच्चों की संज्ञान क्षमता के विकास को लेकर जो सिद्धांत प्रस्तुत किए थे, उनमें यह गुंजाइश थी कि उन्हें गलत साबित किया जा सके और इस मायने में वे वैज्ञानिक सिद्धांत थे। उदाहरण के लिए पियाजे के मुताबिक शिशुओं में वस्तु-स्थायित्व का एहसास प्रथम आठ माह में चरण बद्ध ढंग से विकसित होता है। वस्तु-स्थायित्व से तात्पर्य इस एहसास से है कि जब कोई वस्तु नज़रों से ओझल हो जाए, तब भी उसका अस्तित्व रहता है। इसकी जांच के लिए किया यह जाता था कि किसी बच्ची के सामने से कोई वस्तु विभिन्न तरीकों से हटाकर छिपा दी जाती और उसकी प्रतिक्रिया देखी जाती। पियाजे द्वारा अपने निष्कर्ष प्रकाशित करने के करीब 25 वर्ष बाद कुछ शोधकर्ताओं ने देखा कि कतिपय परिस्थितियों में आठ माह से छोटे बच्चों में भी वस्तु स्थायित्व के एहसास के प्रमाण मिलते हैं। अर्थात वे पियाजे के सिद्धांत के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे थे। इन शोधकर्ताओं ने अपने प्रयोगों में इस बात का विशेष ध्यान रखा था कि बच्ची में वस्तु-स्थायित्व की समझ और उसकी याददाश्त की अल्पावधि के बीच अंतर किया जा सके। उन्होंने यह भी सोचा कि बच्ची की प्रतिक्रिया इस वजह से भी हो सकती है कि वह उस वस्तु तक पहुंचने में असमर्थ है। प्रयोगों से पता चला कि पियाजे जिन प्रतिक्रियाओं को वस्तु-स्थायित्व के अभाव का द्योतक मान रहे थे, वे वास्तव में बच्ची की अन्य सीमाओं की द्योतक थीं। अतः वस्तु-स्थायित्व सम्बंधी उनकी मूल संकल्पना में संशोधन किए गए और इसके परिणामस्वरूप एक ज़्यादा विस्तृत सिद्धांत उभरा।

फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व का मनोविश्लेषण आधारित विवरण ऐसे सिद्धांत का उम्दा उदाहरण है जिसे गलत साबित नहीं किया जा सकता। 'सब कुछ' की व्याख्या करने की यह 'क्षमता' कोई खूबी न होकर एक कमज़ोरी है जो व्यक्तित्व सम्बंधी कई सिद्धांतों में दिखती है।

अधिकांश मनोवैज्ञानिक सिद्धांत जांचने योग्य भविष्यवाणियां पेश करते हैं। जब ऐसे नए प्रमाण मिलते हैं जिनकी व्याख्या ये सिद्धांत नहीं कर पाते, तो इन्हें खारिज भी किया जाता है। कभी-कभी किसी सिद्धांत के प्रवर्तक अपने सिद्धांत पर अड़े रहते हैं, नए प्रमाणों को टालने का प्रयास करते हैं। मगर पॉपर के अनुसार बेहतर सिद्धांतों के पक्ष में पुराने सिद्धांतों को खारिज करते जाना ही विज्ञान का मूल है। इस संदर्भ में सबसे फलदायी रवैया यह होता है कि किसी भी सिद्धांत को 'फिलहाल सर्वोत्तम व्याख्या' माना जाए, न कि 'अंतिम व्याख्या।'

सिद्धांत की किफायत

एक अच्छा वैज्ञानिक सिद्धांत वह है जो कम से कम स्वतंत्र मान्यताओं के आधार पर मौजूदा तथ्यों की व्याख्या करे। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों की सहज प्रवृत्ति यह होती है कि वे किसी परिघटना की सरलतम व्याख्या करें। लिहाज़ा इन सिद्धांतों में एक तरह की किफायत निहित है। शायद यह सहज मानव प्रकृति ही है कि हम जटिल से जटिल चीज़ों की व्याख्या भी कम से कम दिशा निर्देशक तत्वों से करना चाहते हैं। किन्तु मनोविज्ञान के क्षेत्र में दिक्कत यह है कि एक ही चीज़ से जुड़े कई कारक होते हैं और ये एक-दूसरे पर असर डालते हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग करना भी बहुत मुश्किल है। इसलिए प्रायः ऐसा होता है कि मनोवैज्ञानिक सिद्धांत अपेक्षाकृत पेचीदा होते हैं।

कभी-कभी ही यह सम्भव होता है कि अत्यंत किफायती सिद्धांत प्रतिपादित किया जाए। इसका एक उदाहरण हमें सीखने के सिद्धांत में देखने को मिलता है। लगभग 50 वर्ष पूर्व बी.एफ. स्किनर ने सीखने/व्यवहार

मापन के मुद्दे

मनोवैज्ञानिकों के सामने एक समस्या यह आती है कि किसी गुण को नापने से पहले उसकी व्यावहारिक परिभाषा दी जाए। जैसे भौतिक विज्ञान में एक गुण का उदाहरण देखिए - पृथ्वी पर किसी वस्तु का वज़न। इसे यूं परिभाषित किया जा सकता है- 'उस वस्तु पर लगने वाला पृथ्वी का गुरुत्व बल।' सभी भौतिकशास्त्री इससे सहमत होंगे। दूसरी ओर, मान लीजिए मनोवैज्ञानिक 'व्यक्ति की बुद्धि' की व्यावहारिक परिभाषा देना चाहें, तो इसमें आम सहमति की उम्मीद नहीं की जा सकती। कई शोधकर्ता इसकी परिभाषा 'किसी व्यक्ति द्वारा एक सुगठित बुद्धि परीक्षण में प्राप्त अंक' के रूप में करते हैं। मगर यह तो मात्र शब्दों का खेल लगता है। फिर भी इससे इतना तो पता चलता ही है कि उक्त परीक्षण किसी चीज़ के मापन हेतु बनाया गया था (इसे 'क्ष' चीज़ कह सकते हैं।) इस 'क्ष' को कुछ मनोवैज्ञानिक बुद्धि कहते हैं। बरसों के अनुसंधान से पता चला है कि यह 'क्ष' कुछ हद तक वंशानुगत है, आबादी में इसका वितरण सामान्य होता है, इसका सम्बंध कई अन्य रोचक कारकों (स्कूली शिक्षा, अल्पावधि की याददाश्त, कुछ मनोवैज्ञानिक गड़बड़ियों) से देखा गया है और व्यक्तियों के बीच 'क्ष' सम्बंधी अंतर विभिन्न उम्रों में एक-से बने रहते हैं। इन निष्कर्षों के आधार पर 'क्ष' को लेकर काफी समृद्ध सिद्धांत निर्मित हुए हैं। अलबत्ता, शोध की विधियां कितनी ही गहन हों और सिद्धांत कितने ही वैज्ञानिक हों, हम यह कभी नहीं कह सकते कि हम बुद्धि को नाप रहे हैं। हम तो यह भी नहीं कह सकते कि हम नाप क्या रहे हैं।

कुछ वर्षों पहले हार्वर्ड गार्डनर ने बुद्धि की मौजूदा धारणाओं को चुनौती दी थी। अन्य बातों के अलावा गार्डनर ने यह बताया था कि बुद्धि के अंतर्गत सात अलग-अलग असम्बंधित आयाम हैं। ये सात आयाम एक-दूसरे से स्वतंत्र ही पहले 6 वर्ष में विकसित हो जाते हैं। गार्डनर का सिद्धांत बुद्धि के समस्त पूर्ववर्ती अनुसंधान को अपने में समेट लेता है। शुरुआती अनुसंधान के निष्कर्षों की व्याख्या करते हुए गार्डनर कहते हैं कि पारम्परिक बुद्धि परीक्षणों में इन सात में से मात्र तीन आयामों का ही दोहन हुआ था। ये तीन आयाम हैं - भाषा, गणित और जगह (स्पेस) की समझ। काफी सारे अवलोकनों के आंकड़े गार्डनर के सामान्य दावे से मेल खाते हैं। उनका सिद्धांत व्याख्या की क्षमता के लिहाज़ से निहायत शक्तिशाली है और स्कूल पूर्व स्थिति में लागू करने योग्य है। मगर कुछ सवाल अनुत्तरित हैं। इन सवालों को वैज्ञानिक ढंग से नहीं सुलझाया जा सकता। मसलन यदि संगीत और गति-संवेदना (काइनेस्थेटिक) क्षमताओं को हम बुद्धि न मानकर 'प्रतिभा' मानें तो इसका फैसला करने का कोई आधार नहीं है। गार्डनर का मत है कि 'बुद्धि' और 'प्रतिभा' के बीच कोई अंतर नहीं है।

इस लेख को पढ़ते हुए आपको अवश्य लगा होगा कि यदि हम किसी गुण की व्यावहारिक परिभाषा दे दें, तो किसी भी सिद्धांत की जांच वैज्ञानिक ढंग से करना सम्भव है। आप इस परिभाषा का उपयोग करते हुए उस गुण को नाप सकते हैं, प्रयोग कर सकते हैं, आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर सकते हैं और सिद्धांत को गलत साबित कर सकते हैं या गलत साबित करने में नाकाम रह सकते हैं। मगर चन्द सवाल ऐसे हैं जिनके संदर्भ में यह प्रक्रिया अनुपयुक्त व अनुपयोगी रहेगी। मनोविज्ञान के कुछ सबसे दिलचस्प सवालों का सम्बंध स्वयं मानसिक गुणों की प्रकृति से है। ऐसे में पहले से एक व्यावहारिक परिभाषा लेकर चलने से तो आप बंध जाएंगे। मसलन, मान लीजिए आपसे सवाल पूछा जाता है कि 'गति संवेदन की क्षमता एक प्रतिभा है या बुद्धि?' थोड़ा सोचेंगे तो पता चलेगा कि यह सवाल मामूली नहीं है, मात्र शब्दों का खेल नहीं है। इस सवाल के जवाब पर निर्भर है कि स्कूली शिक्षा व आगे क्या किया जाए। आप यह भी देख सकते हैं कि इस गुण की व्यावहारिक परिभाषा से भी बात नहीं बनेगी। इस तरह के सवाल मनोविज्ञान में उठते रहते हैं और प्रायः अन्य वैज्ञानिक सवालों के साथ गुंथे होते हैं। इन दोनों तरह के सवालों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता - जैसे परा-मनोविज्ञान में। शायद यही बात मनोविज्ञान को सटीक विज्ञानों से अलग करती है। ***(स्रोत फीचर्स)***